आत्मानात्म विवेक

आत्मानात्मा चलोकेस्मिन् प्रत्यक्षादि प्रमाणतः ।
सिद्धस्तयोरनात्मातु सर्वत्रैवात्मपूर्वकः ।।

लेखक

स्वामी अच्युतानन्द

नर्मदा तीर, आनन्दाश्रम, बड़वाह।
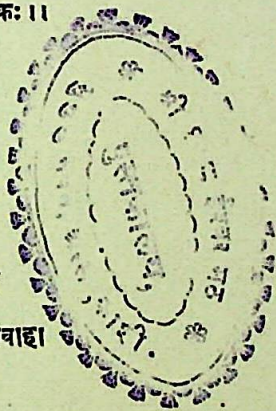
प्रकाशक

श्रीमान सागरमलजी बलदेवदासजी

पाली (मारवाड़)
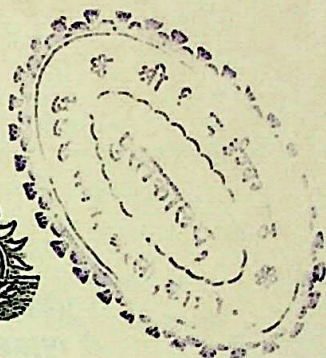
वेदों के सम्बन्ध में कुछ कथन करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान व्यर्थ ही है। वेद अपौरूषेय साक्षात् ईश्वर की वाणी है, अर्थात् उसके निश्वास से प्रकट हुए हैं। "वेदाऽखिलो धर्ममूलम्" अर्थात्–वेद निखिल धर्मों का मूल है, "सर्ववेदात् प्रसिध्यति" अर्थ–सर्व वेदों से ही प्रसिद्ध हुआ है। वेद समस्त सद् विद्याओं के भण्डार हैं। सम्पूर्ण धर्मों के आदि उद्गम स्थान तथा समस्त ज्ञान विज्ञान के मूल आधार हैं। वेद सनातन धर्म और हिन्दू संस्कृति और भारतीय सभ्यता के स्तम्भ और हिन्दू विचार धारा के स्त्रोत हैं। वेदों ने ही सबसे पहले शाश्वत धर्म संस्कृति और सभ्यता तथा आचार विचार के दिव्य सन्देश दिये थे, वेदों ने ही इस अज्ञान अन्धकार से आवृत "आच्छादित" अर्थात्–ढ़के हुए संसार को सबसे पहिले पहिल दिव्य प्रकाश से प्रकाशित किया था, वेद हिन्दू जाति की अक्षय-अमूल्य महानिधि है। हिन्दू जाति की जीवन धारा इसी मूल स्त्रोत से निर्झरित होती है।

जैसे अपने पूर्वजों की वेदों के भाष्यकारों पर परम श्रद्धा थी वैसे ही आधुनिक हिन्दू संतान की भी अतीव श्रद्धा होनी चाहिये। विना श्रद्धा के शान्ति तथा शास्त्र का रहस्य हृदयङ्गम नहीं होता, पिता उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को कहा है, कि "श्रद्धत्स्व" तू श्रद्धाकर और श्री भगवान ने कहा है, "श्रद्धा-वाँल्लभतेज्ञानम्" हे अर्जुन श्रद्धा वाला ही ज्ञान को प्राप्त होता है।

और योग शास्त्र के भाष्य में व्यास भगवान ने कहा है। "श्रद्धैव-जननीव योगिनंपाति" अर्थात् – श्रद्धा ही माता के सदृश योगी की रक्षा करती है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है।

पार्वती शंकरौवन्दे श्रद्धा विश्वास रुपिणौ।
याभ्यांविनान पश्यन्ति सिद्धा अन्तः स्थमीश्वरम्॥ रामायण

अर्थ—पार्वतीरुपिणीश्रद्धा तथा शिवरुप विश्वास को मैं वन्दना करताहूँ। जिनश्रद्धा और विश्वास के बिना हृदय में स्थित भी परमात्मा को सिध्द पुरूष भी नहीं–देख सकते वेद संसार भर के सारे ग्रन्थों से प्राचीन अनादि ईश्वर के विश्वास से बिना परिश्रम के प्रादुर्भूत हुए हैं। जैसे अग्नि से धूम प्रकट होता है, वैसे ही वेद ईश्वर से प्रकट हुए हैं। श्री भगवान् ने वेदों के अन्तभाग उपनिषदों को दोहन किया "सर्वोपनिषदोगावोदोग्धागोपालनन्दनः, पार्थोवत्सः सुधी र्भोक्ता दुग्धं गीता मृतं महत्"। अर्थ-श्री भगवान ने उपनिषदों को गाय बनाया-और-अर्जुन को बच्छड़ा बनाकर गीता रुप महान् अमृत दुग्ध को जनता के कल्याणार्थ दोहन किया।

श्रीकृष्ण अपने सखा परममित्र भक्त वर जिसने भक्ति के प्रभाव से श्री भगवान को अपना सारथि बनाया था, उसको भगवान क्या मिथ्या उपदेश कर सकते थे, कदापि नहीं, क्या अर्जुन इतना मूर्ख था जो बाल की खाल निकालने वाला था कि उनके मिथ्या उपदेश को सुनकर उनकी हां में हां मिलाता गया था, ऐसा कभी नहीं हो सकता था, फिर व्यास भगवान ने श्री भगवान् और अर्जुन के शुभ सम्वाद रुपी पवित्र वेद वाणी को मिथ्या समझ कर अपनी लेखनी से अर्थात् श्रीगणेश द्वारा ग्रथित कराया था कदापि नहीं। जब साधारण लोग भी झूंठी सही अर्थात् हस्ताक्षर या दस्तखत नहीं करते तो व्यास

भगवान मिथ्या वाणी को क्यों लिखवाते और श्री गणेश जी मिथ्या क्यों लिखते और उस पर भाष्यकर्ता श्री शंकराचार्य मिथ्या लिखने के लिए लेखनी हाथ में क्यों लेते । फिर उनके अनुयायी उनके शिष्य ब्रह्मा का अवतार सुरेश्वराचार्य (मंडनमिश्र) मिथ्या क्यों लिख सकते थे, नहीं, फिर हम भी उन हीं के लेखानुसार सत्य ही लिखेगें, मिथ्या लिखने से हमारा क्या प्रयोजन है ।

इसलिए पाठकगण आप ही सत्या सत्य के विचार द्वारा निर्णय कर के ही श्रद्धा और विश्वास करें, तभी शांति प्राप्त होगी साधु महात्माओं का जन्म जनता को उपदेश द्वारा सन्मार्ग दिखा कर उध्दार करने के लिए ही होता है ।

उनका हृदय नवनीत के समान अतीव-स्वच्छ कोमल निर्मल और दयार्द्र होता है । वेही पर दुःख भञ्जन व्यसनी दूसरों के दुःखों को देखकर कातर हृदय हो मक्खन के समान एक ही करूणा युक्त पुकार से द्रवित हो जाते हैं । यह उनका स्वतः सिद्ध स्वाभाविक धर्म है । कहा भी है–(पर दुख द्रवहि सो सन्तपुनीता) यही उनके बाहर के लक्षण हैं, भीतर के लक्षण तो वह स्वयं ही जानते हैं ।

उपनिषदों में तथा गीता में सरलता से अद्वैत सिद्धान्त ही प्रतिपादित प्रतीत होता है और प्राणियों की प्रवृत्ति भी स्वभा–विक एकत्व (अद्वैत) की ओरही होती है क्योंकि सुख एकत्व (अव्दैत) में ही है । यदि एकत्व में आनन्द न होता- तो सुषुप्ति अवस्था को कोई भी नहीं चाहता किन्तु प्रतिदिन नित्यंप्रति लोगों की प्रवृति सुषुप्ति की ओर ही होती है । सुषुप्ति में द्वैत प्रपंच का सर्वथा अभाव ही रहता है और उसमें सुख उपलब्ध होता है यह प्राणी मात्र को अनुभव प्रसिध्द है, इसलिए संसार भर के सभी विचार शीलों को मानना ही उचित है,

कि एकत्व में ही सुख है। और अनेकत्व(द्वैत)में सुख नहीं किन्तु दुःख ही है।

वेदों का तात्पर्य तो एकत्व (अद्वैत) में ही है, क्योंकि द्वैत (अनेकत्व) को तो सभी साधारण मनुष्य भी वेदों के ज्ञान के विना भी जानते हैं, इसी द्वैत को ही यदि वेद कहे तो उससे लाभ कुछ नहीं। और वेदों को अज्ञातज्ञापकत्व न होने से अप्रमाणता भी हो जायगी इसीलिये एकत्व (अद्वैत) में वेदों का आशय है अतः वेदों के अनुकुल ही आत्मानात्मविवेक संक्षेप (समास) से इस निबंध में लिखते हैं सज्जन पाठक त्रुटियों को सुधार कर अवलोकन करेंगे ऐसी आशा है।

आपका ही
स्वामी अच्युतानन्द

आत्मैव देवतः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्म योगं शरीरिणाम् ॥ मनुः

आत्मा

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू ।
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ॥
तमेव विद्वान् न विभाय मृत्यो ।
आत्मानं धीरम् अजरं युवानम् ॥

(अथर्व वेद १०।८।४४)

आत्मा अकाम, धीर, अमर, स्वयंभू (उत्पन्न होने वाली) रस से तृप्त एवं अभाव रहित है। ऐसी धीर, अजर एवं चिर युवा आत्मा को जो जानता है वह मृत्यु से भयभीत नहीं होता।

अतः

इस चाम (देह) के महत्व को मिटा कर हमें आत्मा को महत्व देना चाहिये यह देह तो नारियल की काचली के समान है और उसके भीतर आत्मा तो खोपरे के सदृश है। शरीर तो बदाम के छिलके के तुल्य है और आत्मा भीतर बदाम की गिरी के समान है और शरीर तो चिक्कु के ऊपर की छाल के समान है और आत्मा भीतर के गुद्दे के समान है। और देह तो चाँवल के ऊपर फोतरे (तुप) छिलके समान है। और आत्मा चाँवल के समान हैं। और देह तो म्यान के समान है। और आत्मा चमकती हुई तलवार के समान है। विचार करने से ज्ञात होता है। यह देह तो पलपल में बदलता रहता है। शिशु, बालक, वृद्धयुवादि और अवस्थाओं के चक्र का अनुभान सर्वजन को प्रसिद्ध है गीता में भी कहा है (देहिनोऽस्मिन यथा देहे कौमारं यौवनं

जरा) हमारे पूर्वज यह मानते थे कि बारह वर्ष में पुराना शरीर मर जाता है । इसीलिये प्रायश्चित्त तपश्चर्या अध्ययनादि की मियाद भी बारह वर्ष की रखते थे । सुनते हैं कि बहुत वर्षों की जुदाई के बाद गुरुकुलादि से पढ़कर के पुत्र अपनी माता से मिला तो मां ने पुत्र को पहिचाना नहीं । अभी की एक घटना है कि बड़वाह ग्राम के राना साहब डूंगरसिंह का साला १८–२० वर्ष का था । घर से किसी कारण वशात चला गया था । और ८–१० वर्ष के बाद घर वालों से मिलने आया तो घर वालों ने किसी ने भी उसको नहीं पहिचाना न पहिचान नेसे वह लड़का फिर घर से चला गया । हमारे पास तीन चार बार आ चुका है हमने उसको प्रत्यक्ष नेत्रों से देखा है । अभी वह मौजूद है । तो यही क्या प्रतिक्षण बदलने वाला प्रतिक्षण मरनेवाला चाम का शरीर ही तेरा रुप है । इस देह में दिनरात मलमूत्र की नालियां (गंदी गटरे) बहती हैं । और तेरे जैसा जबरदस्त धोने वाला मिलने पर भी अस्वच्छता (दुर्गन्धता) का व्रत छूटता नहीं है । शास्त्र में कहा है—

काया सुगन्ध तोयाद्यै । यत्नेनापि सुसंस्कृतः ।
नजहाति स्वकंभावं· श्वपुच्छमिव नामितम् ॥

अर्थ–इस कायां अर्थात् शरीर को सुगन्धित जलादिकों करके कितने भी प्रयत्न से स्वच्छ सुसस्कृत अलंकृत किया जाये परन्तु तो भी यह अपने मलिन दुर्गन्धयुक्त स्वभाव को कभी नहीं छोड़ता, जैसे कुत्ते की पूँछ सीधी करने के लिए बारह वर्ष नलका में रखी बारह वर्ष बाद निकालने पर भी वैसी टेढ़ी (बांकी) ही रही तद्वत देह है । कितना भी स्वच्छ करें वह अपनी दुर्गन्धता के व्रत को कभी नहीं त्यागता, क्या वही

शरीर तूं है ? वह अस्वच्छ तूं उसे शुद्ध करने वाला वह रोगी तूं उसे औषधादि देनेवाला, वह साढ़ेतीन हाथ की जगह घेरने वाला, और तूं त्रिभुवन विहारी, वह प्रतिपल नित्य परिवर्तनशील, और तूं उसके परिवर्तन को देखने वाला वह मरणेवाला और तूं अमर, तेरा अर्थात आत्मा का और उस शरीर (अनात्मा) का भेद इतना स्पष्ट होने पर भी तूं इतना दुःखी संकुचित क्यों होता है ।

श्री भगवान पूछते हैं कि शरीर का नाश शोक करने योग्य है क्या ? शरीर तो कपड़े के समान हैं । पुराने फटने पर नवीन धारण किए जाते हैं । यदि कोई एक ही शरीर आत्मा से सदैव चिपका रहता, तो आत्मा की बुरी दशा (गत) होती ।

सारा विकास रुक जाता । आनन्द कपूर के समान उड़कर हवा वन जाता । और ज्ञानप्रभा मन्द हो जाती । अतः शरीर का नाश शोक करने के योग्य नहीं है हां यदि आत्मा का नाश हो सकता होता तो अवश्य ही शोचनीय होता । परन्तु आत्मा तो अविनाशी है । नाश रहित है । उसपर अनेक कलेवर (देह) आते और जाते रहते हैं ।

विण्मूत्रादि मलानांहि सञ्चयो देहईरितः ।
अस्मिन्नहं मति श्चेत् बाह्ये कस्मान्न साभवेत् ॥

अर्थ—मलमूत्र, कफ, रुधिर, माँस, चर्बी इत्यादि मलों के संघात का नाम ही देह है । इसमें यदि तेरी अहं बुद्धि है अर्थात् मलादिकों का भण्डार शरीर ही मैं हूँ तो बाहर जो हड्डी मांस विष्ठादि हैं उनमें मैं हु ऐसी तेरी वुद्धि क्यों नहीं होंती ।

मांसासृक विण्मूत्र स्नायु मज्जाऽस्थिसंहतौ।
देहेचेत् प्रीतिमान् मूढ़ो भवति नरकेऽपिसः॥

अर्थः—मांस-रक्त-पीप विष्ठा मूत्र नसें मज्जा हड्डी इनके संघात शरीर में यदि मूर्ख प्रीति करे तो ऐसा संघात तो नरक में भी है। नरक और शरीर में कुछ भी भेद नहीं है।

स्थानाद्बीजा दुपष्टम्भान्निष्पन्दा न्निधनादपि।
कायमाधेय शौचत्वात् पण्डिता ह्यशुचिंविदुः॥

अर्थः—शरीर के रहने की जगह-स्थानात्—अर्थात् माता का गर्भाशय अतीव मलिन और पिता का वीर्याशय अति ही अपवित्र और बीज अर्थात्—माता का रुधिर और पिता का वीर्य उपष्टम्भात् अर्थात्—हड्डियां, निष्यन्दात्-अर्थात् नेत्रादि नव छिद्रों से मल निकलता रहता है। निधनात् अर्थात् मरने पर तो इतना अशुद्ध अपावन हो जाता है। कि मृत शरीर को स्पर्श करने पर भी स्नान करना पड़ता है। शरीर को यद्यपि चन्दन केसरादि सुगन्धित द्रव्यों के लेप द्वारा पवित्र और सुगन्धित करते हैं। परन्तु तो भी अपवित्र ही रहता है इसीलिए पण्डित इस शरीर को अशुचि अपावन ही जानते है।

अत्यन्तमलिनोदेहो देही चातिनिर्मलः।
उभयोरन्तरज्ञात्वा कस्य शौचंविधीयते॥

अर्थः—शरीर अत्यन्त मलिन है, और आत्मा अत्यन्त निर्मल है। दोनों के अन्तर भेद को जान करके किसकी शुद्धि की जावे।

आत्माहं बुद्धिजं पुण्यं नमूतो न भविष्यति।
देहात्माबुद्धिजंपापं नतद् गोवध कोटिभिः॥

अर्थः—मैं आत्मा हूँ, इस बुद्धि से उत्पन्न हुआ पुण्य न भूत काल में था और न भविष्य काल में होगा इतना महात्म्य है, और मैं देह हूँ अर्थात् देह ही आत्मा है, इस बुद्धि से उत्पन्न हुआ पाप करोड़ों गाय के वध करने से भी अधिक है।

नव छिद्रै निरन्तरं स्रवत्सु मलेषु रोम कूपैर संख्यातैः।
स्विन्ने गात्रे को नाम स्वदेह मुपायेन प्रक्षालयितुं शक्नुयात्॥

अर्थः—नव छिद्रों से निरन्तर मलों के निकलने से और असंख्यात रोम कूपों से पसीना निकल कर अंग आर्द्र हो जाने से दुर्गन्ध युक्त शरीर को शुद्ध करने को कोई भी पुरुष समर्थ नहीं हो सकता है।

आत्माचिद्धिन्सुखात्माऽनुभव परिचितः सर्व देहादियन्ता-
स्त्मेवं मूढ बुद्धिर्भजति ननुजनोऽ नित्यदेहात्म बुद्धिम्।
वाह्योऽस्थिस्नायुमज्जा पल रुधिर वसा चर्म मेदो युगन्त-
र्विण्मूत्र श्लेष्म पूर्णं स्वपर वपु रहो संविदित्वऽविभूयः ॥४॥
देह स्त्री पुत्र मित्रानुचर हय वृषा स्तोष हेतुममेत्थम्-
सर्वेस्वायुर्नयन्ति प्रथित मलममी मांस मीमांसयेह ।
एते जीवन्ति येन व्यवहृति पटवो येन सौभाग्य भाज-
स्तं प्राणाधीशमन्तर्गतममृत ममुं नैव मीमांसयन्ति ॥५॥

अर्थः—जाग्रदवस्था में देह का हलन चलन व्यवहार आत्मा से ही होता है, अतः आत्मा चेतन है और स्वाप्निक पदार्थों को भी जानता है। इससे भी आत्मा चेतन (ज्ञान) स्वरूप है, और सुषुप्ति में सुख का अनुभव होता है, इसलिये आत्मा आनन्द रूप है, इस प्रकार अनुभव से जाना हुआ और देहादि कों का प्रेरक आत्मा ही है, ऐसा होने पर भी मूर्ख मनुष्य अनित्य देह को ही आत्मा मानता है, और अपने के तथा दूसरों के शरीरों के वाहर भाग में हड्डी, स्नायु, मज्जा, मांस,

रक्त, चर्बी, चमड़ी और मेदादि से पूर्ण हैं. और भीतर मल-मूत्र कफादि से भरा हुआ है, ऐसा जानने पर भी मनुष्य विपरीत ही मानते हैं कि यह शरीर स्त्री, पुत्र, मित्र, नौकर, घोड़ा. बैल इत्यादि सब मेरे सुख के साधन हैं। इन मांस रूप पदार्थों का ही दिन रात विचार करते करते अपने अत्युत्तम जीवन को अर्थात् आयु को व्यर्थ ही व्यतीत कर देते हैं परन्तु जिससे जीते हैं, व्यवहार में कुशल और कामकाज करने में समर्थ होते हैं, और जिससे भाग्यशील बने हैं, और अपने शरीर के अन्दर रहा हुआ प्राणों का स्वामी अमृत रूप आत्मा का विचार ही नहीं करते।

नवछिद्र कृता देहाः स्रवन्ति घटिका इव।
बाह्य शौचै र्न शुध्यति नान्तः शौचं विधीयते॥

अर्थः—नव छिद्रों वाले शरीर परमात्मा ने बनाये जैसे कच्चे घड़े से जल टपकता रहता है, वैसे ही शरीर के नेत्रादि छिद्रों से मैला दुर्गन्ध निकलता रहता है, बाहर से धोने पर भी शुद्ध नहीं होता, भीतर भी पवित्र नहीं है।

आपादमस्तकमहं मातापितृ विनिर्मितः।
इत्येको निश्चयो राम! बन्धायासद् विलोकनात्॥

अर्थ हे राम! मस्तक से लेकर पैर पर्यन्त यह शरीर माता पिता से उत्पन्न हुआ है, इसी शरीर को जो आत्मा मानता है, वह बंधन के लिये होता है, क्यों कि असद् मिथ्या को देखने से ही बंधन कारक है।

सात्याज्या सर्व यत्नेन सर्वनाशेऽप्युपस्थिते।
स्प्रष्ट व्यासान भव्येन श्वमांसमिव पुल्कसी॥

अर्थः—सर्वनाश होवे पर शरीर में आत्म बुद्धिका प्रयत्न से त्याग करना चाहिये, जैसे कुत्ते के मांस को पुल्कसी (चाण्डा-

लिनी) स्पर्श नहीं करती, वैसे ही शरीर को भी स्पर्श नहीं करना चाहिये ।

माता पित्रोर्मलोद्‌ भूतं मलमांसमयंवपुः ।
त्यक्त्वा चण्डालवद्‌ दूरं ब्रह्मभूय कृतीभव ॥

अर्थः—ये शरीर तो घास पात के बन हुए होने से अनात्मा और जड हैं, चौलाइ, मेथी, बथुवा, सोआपालक, करमकला, बैंगन, और मूला, गाजर, सक्करकन्दी आलू इत्यादि ये सब घास पात ही हैं, गेंहूं, चना, जौ, चावल, ज्वार, मक्का, मूंग, उडद इत्यादि भी एक प्रकार के घास ही हैं मनुष्यों और पशुओं का खाना एक सा ही है, मनुष्य ज्वार के ऊपर के भाग दाने को ले लेते हैं, और पशु नीचे के भाग कड़वी को खा लेते हैं, दोनों एक ही, पशु अन्न नहीं खाते ऐसा नहीं है. किन्तु मनुष्य अपने लोभ के लिए अन्न पशुओं को देते ही नहीं हैं यदि पशुओं को अन्न मिल जावे तो चोरी से भी मार पीट सहार कर खाही जाते हैं, और हाथी को रातब, और घोड़ों कों चने (चंदी) और बैलों को अन्न और कुत्तों को भी रोटी आदि समय समय पर देते ही हैं, कितने मनुष्य तो ज्वार की कडवी को गन्ने के समान चूस जाते हैं, तात्पर्य यह कि मनुष्यों और पशुओं के खाने का भक्ष्य पदार्थ प्रायः समान ही है, अद्यते इति अन्नम्–जो खाया जाता है उस को अन्न कहते हैं, मनुष्य दाल, भात, रोटी शाकादि बनाकर खाने लगते हैं, जब ग्रास मुख में रखते हैं, तो प्राण वायु भीतर खैंच लेता है, भीतर गया हुआ गुदा द्वार से बाहर न निकल जावे, इसलिए व्यान वायु नाभी के पास आमाशय में रोक देता है, वहां भगवान्‌ जठराग्नि रूप होकर उसको पकाते हैं, श्री भगवान्‌ ने स्वयं ही गीता में कहा है ।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्‌ ॥ गीता.

अर्थः—श्री भगवान् कहते हैं मैं ही वैश्वानर अग्नी रूप प्राणियों के हृदय में प्राणापान होकर चार प्रकार के अन्न–भक्ष्य चने आदि, भोज्य, रोटी, दालादि, चोष्य, आम, गन्नादि, लेह्य, चटनी, मधु आदि इनको मैं ही पकाता हूँ, नाभि में अनाहत चक्र के अन्दर समान वायु रहता है, वह पकाये हुए अन्न का रस बनाता है, जैसे दधि के मथने से तक्र नीचे रह जाता है, और नवनीत ऊपर आजाता है, वैसे ही अन्न का सार भाग ऊपर चला जाता है असारभाग विष्ठा को अपान वायु गुदा द्वारा बाहर निकाल देता है. रस के बनने में ४ दिन लगते हैं, रस से रुधिर, रुधिर से मांस, मांस से चर्वी, चर्वी से मज्जा, मज्जा से हड्डी, हड्डी से वीर्य बनता है, रसादि के बनने में चार दिन लगते हैं, यह नक्षत्रों के हिसाब से नक्षत्र के एक महीनों में तैयार होता है, अश्विनी आदि नक्षत्र २८ होने से नाक्षत्र मास २८ दिन का होता है, इसी प्रकार स्त्रियों को भी २८ दिन में रजोधर्म होता है, इसी को मासिक धर्म कहते हैं। यह वीर्य खाये हुए अन्न का अर्थात् घास पात का बना है यह वीर्य अनात्म (जड़) होने पर भी इस के भीतर पुरुष के चक्षुरादि सभी इन्द्रिय रहते हैं, जैसे बड़ के सूक्ष्म बीज में बड के पत्ते फलादि रहते हैं, तभी तो बोने पर बड़ उत्पन्न होता है. और उसमें पत्र फलादि भी हो जाते हैं। वैसे ही वीर्य में भी चक्षुरादि इन्द्रिय रहते हैं। वह वीर्य स्त्री के गर्भाशय में जाकर नव ९ या दस १० मास में शिशु बन कर योनि द्वारा बाहर आता है। यही शिशु का शरीर घास पात का है। फिर माता का दूध पीने से बढता है, फिर अन्नादि के खाने से बालक, युवा, वृद्धादि होता है। और न खाने से दुर्बल कृश होजाता है। प्रारब्ध समाप्त हो जाने पर मृत होजाता है। इसलिए यह शरीर घास पात का बना हुआ होने से जड और अनात्मा है। यह शरीर आत्मा नहीं है। राजा बृहद्रथ राज्य

अपने पुत्र को सौंप करके महर्षि शायकायन की शरण में जाकर इस गाथा को कहता भया। राजेमां गाथां जगाद--

भगवन्नस्थि चर्म स्नायु मज्जा मांस शुक्र शोणित श्लेष्माश्रु दूषिका दूषिते विण्मूत्र कफपित्तवात संघाते दुर्गन्धेनिःसारेऽस्मिञ्छरीरे किं कामोप भोगैः--

अर्थः—हे भगवन्—हड्डी, चमडी, नसें, मज्जा, मांस, वीर्य, रुधिर, श्लेष्म, नेत्रों का जल और कीचड़ इत्यादि मलों से दूषित और मल मूत्र वात पित्त कफ इत्यादि घृणित पदार्थों के संघात से युक्त और दुर्गन्ध सार रहित इस शरीर में कामनाओं के भोगने से क्या सुख है, अर्थात् कुछ नहीं है।

काम क्रोध लोभ भय विषादेर्ष्येष्टवियोगानिष्टसंप्रयोगक्षुत् पिपासा जरा मृत्यु रोग शोकाद्यै रभिहतेस्मिञ्छरीरे किं कामोप भोगैः।

अर्थः—काम, क्रोध, लोभ, भय, विषाद, ईर्ष्या, इष्टकावियोग, अनिष्ट का संयोग, भूख, प्यास, जरा, मृत्यु, रोग, शोकादि से पीड़ित इस शरीर में भोग भोगने से कुछ भी लाभ नहीं है।

सर्वं चेदं क्षयिष्णु पश्यामोयथे मेदंश मशकादयस्तृणवन्नश्यतयोद्भूत प्रध्वंसिनः ॥ ४ ॥

अर्थः—जैसे डांस मच्छरादि तृण के समान उत्पन्न होते हैं, और नाश हो जाता है। वैसे ही इन सर्व पदार्थों को क्षय होने वाले है, ऐसा हम देखते हैं।

सो हमित्येतद्विधे स्मिन् संसारे किं कामोपभोगैरे वाश्रितस्या सकृदिहा वर्तनं दृश्यत इत्युद्धर्तु मर्हसीन्यन्धोद पानस्थे भेक इवा हमस्मिन संसारे भगवंत्वंनो गतिः। मैत्रायुपनिषद्।

अर्थः—इस नश्वर संसार में भोगों के भोगने से क्या इसके आश्रित होकर बार बार आना होता है। इससे आप

मेरा उद्धार करें जसे मेंडक जलादि रहित कूपादि में रहता है। वैसे ही मैं संसार में रहता हूँ । आप ही हमारी गति हैं॥ शरीरमिदं मैथुना देवोद्भूतं संविद व्यपेतं (संविद पेतम्) निरय इव मूत्र द्वारेण निष्क्रान्त मस्थिभि श्चितंमांसेनानु लिप्तं चर्मणेव बद्धं विण्मूत्र कफ वात पित मज्जा मेदो वसाभिरन्यैश्चा ऽऽ मयै बहुभिः परिपूर्ण कोश इव वसुनेतिच चिकित्सया च रोग शांति र्ननियता शांतो ऽपिरोगः कदाचित् पुनरुदेति । एतादृशेशरीरे वर्तमानस्यभगवंस्त्वंनो गति रिति । मैत्र्युपनिषद्।

अर्थः— यह शरीर माता पिता के संयोगसे उत्पन्न हुआ है। और ज्ञान रहित जड़ है। नरक के सदृश है । मूत्र द्वार से निकला है, हड्डियों से चुना गया है, मांस से लीपा गया है, चमड़ी से मढ़ा गया है या ढका गया है । विष्ठामूत्र कफ वातपित्त मज्जा मेद । रक्त, चर्बी ईत्यादि दुर्गन्धित पदार्थों से भरा हुआ है। और बहुत रोगों से युक्त है । जैसे खजाने में अनेक प्रकार के द्रव्य भरे रहते हैं, वैसे ही यह शरीर मलमूत्रादि अनेक अपवित्र द्रव्यों से भरा हुआ हैं । चिकित्सा करने से प्रथम तो रोग नाश ही नहीं होता यदि हो भी जाता है, तो फिर उत्पन्न हो जाता है । ऐसे घृणित शरीर में रहने से मेरी आप ही गति हैं ।

राजा बृहद्रथ ने गाथा सुना कर महर्षि से कहा कि आप ही हमारी गति हैं । तब महर्षि ने कहा यदि हम गति अर्थात् मोक्ष का स्वरूप आप को बता देवें तो हम को गुरू दक्षिणा में क्या देगा राजा ने कहा मैं अपना सभी राज्य आपको देता हूँ, महर्षि ने कहा राज्य तो अपने पुत्र को दे दिया है अब उसमें तेरा अधिकार नहीं रहा, यदि पुत्र दे भी देवे, तो यह राज्य धर्मशाला के समान है तुम्हारे पिता पितामह प्रपितामह आदि कितने ही इस धर्मशाला में रहकर चले गये हैं, और तूं भी

चला आया है, यह धर्मशाला के समान राज्य हमारे काम का नहीं है, और भी जब हम जागते हैं तब परमात्मा का नाम लेते हैं, तब राज्य के मालिक हो जावेंगे, तब जब प्रातः काल जागेंगे ईश्वर का नाम तो भूल जायेगा। किसी को पारितोषिक देना है किसी को दण्ड देना है, इन्हीं बातों का स्मरण होगा। इसलिये यह हमारे काम का नहीं है। और भी अब हमारे सब लोग शुभचिन्तक हैं, जब हम राजा हो जावेंगे तो तुम्हारे नजदीकी (काका) चाचा ताउ के लड़के हमारे अशुभ चिन्तक हो जायेंगे और कहा करेंगे, कि यह महात्मा शीघ्र मर जावे। तो राज्य हम को मिल जावे, राज्य के लिये अशुभचिन्तक हो जायेंगे, इसलिए राज्य हमारे काम का नहीं है। राजा ने कहा, और तो मेरा किसी पर अधिकार नहीं है, मेरी स्त्री पर अधिकार है, उसको आपके अर्पण करताहूँ। महात्मा ने कहा कुमारी का दान हुआ करता है। विवाहिता का दान नहीं हुआ करता। हम निष्कामी है। हम को स्त्री की जरूरत नहीं, हम को हमारे योग्य कोई वस्तु देनी चाहिये। राजा ने कहा मैं मेरा शरीर अर्पण करता हूँ महर्षि ने कहा इसको तो तुम ही अपवित्र और नाशवान कह चुके हो और यदि यहाँ मर जावें, तो मनुष्यों को श्मशान में जलाने के लिये बुलाना पड़े और लकड़ियां और कफन आदि मंगवाना पड़े। इस उपाधि को लेकर क्या करें। तब राजा ने कहा, मैं मेरा मन आपके अर्पण करता हूँ महर्षि ने कहा, ज्ञान होने पर मन का नाश हो जाता है हम को अविनाशी वस्तु दो तब राजा बहुत ही घबराया, बहुत ही दुःखी हुआ, और मन में कहने लगा, मैं अपने आपको सम्राट समझता था, मैं तो अतीवरंक हूँ, जो महात्मा को देने के लिये भी मेरे पास कोई वस्तु नहीं, राजा शोकसागर में गोते खाने लगा। तब महर्षि ने कहा, हम तेरे से एक चीज मांगते हैं, पर इस शर्त पर (प्रतिज्ञा-

पर) कि देकर फिर वापिस नहीं लेनी । राजा ने कहा मांगे मैं देकर वापिस नहीं लूंगा, महर्षि ने कहा यद्यपि मन नाशवान है, यही मुझको दे दो राजा ने मन को संकल्प करके महर्षि के अर्पण कर दिया, उसकी परीक्षा के लिये महर्षि वहां से चल दिये. राजा के मन में आया कि मैं इनसे कुछ पूछ तो लूं, मेरा मन तो ले लिया, और बतलाया तो कुछ नहीं, फिर राजा के मन में विचार आया, पूछना तो मन से होता है, मन तो मैंने उनको दे दिया है, जब पूछूंगा तो मिथ्यावादी हो जाऊंगा, जो हुआ सो हुआ, अब राजा अपने मन से कुछ काम नहीं लेता, बालक के समान रहने लगा, पांच सात दिन के बाद महर्षि फिर वहां आये, और राजा ने मन को महर्षि को दे दिया था, बिना मन के प्रणाम नहीं होता, इसलिये राजा ने प्रणाम नहीं किया, महर्षि बहुत ही प्रसन्न हुए, और राजा से कहा अब तूं शुद्ध निर्मल अन्तः करण वाला है, अब जो तुम्हारी इच्छा हो वह पूछ, राजा ने कहा, पूछना तो मन से होता है, वह मन मैंने आपको दे दिया, बिना मन के कैसे पूंछू। महर्षि ने कहा तूं मेरे मन से काम ले, मैं तुझको आज्ञा देता हूँ। राजा ने कहा गतिको अर्थात् ब्रह्म (मोक्ष) को बतावें, महर्षि ने कहा, जो तुमने हमको मन दिया है जो मन को देने वाला मन देने के बाद जो बचा, जो मन देने को जानता है, वह तेरा आत्मा ब्रह्म रूप है, या यों कहें, जो तुमने मन मुझको दे दिया जो मन को देने वाले तुम्हारे वही मन देने के बाद जो बचा, वही तुम्हारा स्वरूप साक्षी आत्मा ही ब्रह्म है, राजा का अन्तःकरण शुद्ध था, और अधिकारी था, इसलिये एकदम हृदय में साक्षात् ब्रह्म का प्रकाश होकर आनन्द के अश्रु बहने लगे अभय पद को प्राप्त होकर अपने परमानन्द स्वरूप में मग्न होगया, वैसे ही अपना आत्मा भी साक्षी रूप होने से ब्रह्म रूप ही है, किन्तु

अज्ञान के कारण भासता नहीं, अज्ञान के नाश हो जाने से वह प्रत्यक्ष भासता है। इसलिये अज्ञान के नाश के लिये साधक को भगीरथ प्रयत्न करना चाहिये।

वर्चस्कंत्वन्नस्य कार्यं त्वाद्यनात्मेति गम्यते।
तद्भागः सेन्द्रियदेहस्तद्वत् किमितिनेक्ष्यते ॥

अर्थ—जैसे अन्न का कार्य होने से विष्ठा आत्मा रूप नहीं किन्तु अनात्मा है, ऐसा सबही जानते हैं, सबको अनुभव प्रसिध्द है, वैसे ही उसी अन्न का कार्य चक्षुरादि इन्द्रियो सहित शरीर भी अनात्मा ही है, ऐसा क्यों नही जानते। इसमें यह अनुमान भी है—इन्द्रिय सहित शरीर पक्ष अनात्मा है साध्य) अन्न का कार्य होने से हेतु। जो जो अन्न का कार्य होता है सो सो अनात्मा ही होता है। जैसे विष्ठा दृष्टान्त। केवल अन्न का कार्य होने से ही शरीरादिकों में अनात्मता अनुमान से सिध्द नहीं। किन्तु अन्न का स्वरुप होने से भी अन्न के समान ही शरीरादिकों की अनात्मता अनुमान से भी सिध्द होती है। अनुमान-शरीरदि पक्ष। अनात्मा है. साध्या। अन्न रुप होने से-हेतु। जो जो अन्न रुप होता है, सो सो अनात्म होता है जैसे चावलादि अन्न-दृष्टांत। इसी अर्थ को स्पष्ठ करते हैं।

प्रागना त्मैव जग्धं सदात्मता मेत्य विद्यया।
स्रगा लेपन वद्दे हंत स्मात् पश्ये द्विवि क्तधीः॥ नै.अ.२३.१२

अर्थ—खाने से पहिले दाल भातादि अन्न अनात्मा (जड़) ही है और खाने के वाद अन्न शरीरादि रूप में परिणत होकर अविद्या से आत्म भाव को प्राप्त हुआ भासता है, इसलिये विवेकी पुरूष माला चन्दनादि लेप के समान शरीरादिकों को अनात्मा जाने इसमें अनुमान भी है तथाहि-शरीरादि-पक्ष अनात्मा है,

साध्य कदाचित अर्थात आगन्तुक होने से-हेतु। जो जो कदाचित्क होता है, सो सो अनात्मा होता है, जैसे माला चन्दनादि का लेप दृष्टांत।

यदि मेरे बचन का आदर न करके तू नहीं मानेगा, तो तू अपवित्रता की खानि इस शरीर से आप ही निराश हो जायगा। क्योंकि नश्वर है यहां यह अनुमान है विवाद का आस्पद शरीर अनात्मा है। नाश वान् होने से—हेतु। जो जो नाश-वान् होता है सो सो अनात्मा होता है। जैसे मृत का (शव) शरीर अनात्मा है इसी अर्थ को प्रदर्शित करते है।

मन्यसे तावदस्मीति यावदस्मान्न नीयसे।
श्वभिःक्रोडी कृते देहे नैवं त्वमभि मंस्यसे॥ नै.२-१३

अर्थ—तवतक इस शरीर में तू अभिमान करता है, जब तक इसको छोड़कर परलोक में नहीं जाता इसको त्यागने के पश्चात कुत्तों से वेष्टित इस स्थूल शरीर में फिर अभिमान तू नहीं करेगा। शरीर को ही सारवस्तु मान कर इसमें विशेष ममता करना उचित नहीं है। क्योंकि कुत्ते आदिकों की भी इस शरीर में ममता समान है इसी को स्फुट करते है।

शिर आक्रम्य पादेन भर्त्सयत्य परान् शुन:।
दृष्ट्वा साधारणं देहं कस्मात् सक्तोऽसितत्रभो:॥ १४

अर्थ—एक कुत्ता अपने पैर से तेरे मृत शरीर (शव) के शिर को दबाकर दूसरे कुत्तों को झिडकता है, इस साधारण शरीर को देखकर भी हे मूर्ख इस शरीर में तू क्यों आसक्ति करता है। बुध्दि से लेकर शरीर पर्यन्त पदार्थों को अनात्मता केवल अनुमान से ही सिध्द नहीं है किन्तु यही अर्थ श्रुतिप्रमाण से भी सिध्द है इसी को स्फुट करते हैं।

बुसव्रीहि पलालां शै बीज मैं कं त्रिधायथा।
बुध्दि:मांस पुरीषां शैरन्नं तद्ददवस्थितम् ॥ १ ॥

अर्थ—जैसे एक ही बीज सूक्ष्मभाग बींहि, पलाल- इन तीन भागों से तीन प्रकार का होता है, वैसे ही खाया हुआ अन्न भी बुध्दि मांस, विष्ठा, इन तीन भागों से तीन प्रकार का ही हो जाता है, यहां बुध्दि शब्द अन्य इन्द्रियों का भी उपलक्षक है, और मांस पद से स्थूल शरीर का भी ग्रहण है इस अर्थ में श्रुति भी प्रमाण है—अन्नमशितं त्रेधाविधीयतेतस्यंयःस्थविष्ठो धातुस्त त्पुरीषं भवति योमध्यमस्त न्मांसंयो अणिष्ठःस्तन्मनः अर्थ—खाया हुआ अन्न तीन प्रकार का हो जाता है, उसके स्थूल भाग का विष्ठा हो जाता है और मध्यम भाग का मांस हो जाता है और सूक्ष्म भाग का मन वन जाता है। आपः पीता स्त्रेधाविधीयन्ते तासांयः स्थाविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति।

योमध्यम स्तल्लोहितंयोंऽणिष्ठाः सप्राणः" अर्थ—जल पान किया हुआ तीन भाग वाला हो जाता है उसकी स्थूल धातु मूत्र हो जातो है। और मध्यम का रुधिर हो जाता है और सूक्ष्मांशका प्राण हो जाता है 'तेजो'ऽशितं त्रेधाविधियते, तस्य स्थविष्ठो धातु स्तादस्थि भवतियोमध्यमः सामज्ञा योऽणिष्ठः सावाक

अर्थ—अग्निका अंश घृत आदि के खाये हुए के तीन भाग बनते हैं स्थूल भाग की हड्डी मध्यम की मज्जा और सूक्ष्म भाग वाक्। अन्नमयं सौम्यमनः आपोमयः प्राणस्तेजोमयीवाक्। पूर्वोक्त अर्थ निश्चय होने पर विवेकी पुरुष राग द्वेष से विकार को नहीं प्राप्त होता इसी अर्थ की दृढ़ता के लिये उत्तर श्लोक में दृष्टान्त लिखते हैं:—

वर्चस्के सम्परित्यक्ते दोषतश्चाव धारिते।
यदि दोषंवदेत्तस्मैंकितत्रों च्चरितुमेवेत् ॥१६

अर्थ—विष्ठा त्यागने पर और उसको दुर्गन्धादि दोष युक्त जानने से यदि कोई मनुष्य उस विष्ठा को दोष युक्त कहकर उस विष्ठा की निन्दा करे; तो उस विष्टा को त्यगने वाले पुरुष की क्या हानि है। कुछ नहीं अब दार्ष्टान्त को उत्तर श्लोक में निरूपण करते हैं:—

तद्वत्सूक्ष्मे तथा स्थूले देहे त्यक्ते विवेकतः।
यदिदोषं वदेत्ताभ्यांकिंतत्र विदुषोभवेत् ॥१७

अर्थ—वैसे ही विवेक द्वारा स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर का अभिमान, त्याग देने से यदि कोई पुरुष शरीर की निन्दा करे या दुष्ट कहे तो उसमें ज्ञानी के आत्मा की क्या हानि है। अर्थात कुछ नहीं। दोनों शरीरों में अहंकार तथा ममकार रूप अभेद अभिमान तादात्म्य सम्बन्ध ही तत्वमसि वाक्यार्थके ज्ञान में प्रतिबन्धक है। इस कारण से भी विवेकियों ने इस मिथ्या अभिमान को त्याना चाहिये। यह अर्थ साधक पुरुष को अधिक यत्न से सम्पादन करना चाहिये। इसी अर्थ की सिध्दि के लिए कहते हैं वुद्धि आदि से लेकर शरीर पर्यन्त पदार्थों में जो अहंमम दृढ़ अभिमान है एतावन्मात्रही (अहंब्रह्मास्मि) इत्याकारक वाक्यार्थ की अप्रतीति में कारण अर्थात् प्रतिवन्धक है उसके अभाव अर्थात् नाश होने पर विद्वान् किसी भी भिन्नताको प्राप्त नहीं होता एक अद्वितीय प्रत्यगात्मा रुप में ही स्थित रहता है इसी अर्थ को आगे प्रदर्शित करते हैं।

रिपौ बन्धौ स्वदेहेच समैकात्म्य प्रपश्यतः।
विवेकिनः कुतः कोपः स्वदेहावयवे ष्विव ॥ १

अर्थ - शत्रु में मित्र में तथा अपने शरीर में एक ही आत्मा को सब में समान देखने वाले विवेकी को अपने शरीर के अङ्गों

के समान (जैसे कभी दान्त जिव्हा को काटे, तो दान्तों पर क्रोध करके उखाड नही डालता) दूसरे किसी व्यक्ति पर क्रोध नहीं करता ॥

अब दृश्य होने से तथा आगमापायी होने से भी शरीर की अनित्यता तथा अनात्मता को कहते हैं।

घटादिवच्च दृश्यत्वात्तै रेवकरणैः दृशेः ।
स्वप्नेचानन्वया जज्ञे यो देहोऽनात्मेति सूरिभिः ॥ १६

अर्थ- जिन नेत्रादि साधनों से घटादि देखे जाते है उन्ही से द्रष्टा का शरीर भी देखा जाता है इसलिये घटादि के समान दृश्य होने से और स्वप्न में स्थूल शरीर का सम्बन्ध न होने से विवेकी पुरुष इस स्थूल शरीर को अनात्मारुप निश्चय करे अनुमान भी हैं स्थूल शरीर अनात्मा है। दृश्य होने से जो दृश्य होता है सो सो अनात्मा होता है जैसे घटादि। और स्वप्नावस्था में किसी अन्यप्रति भासिक शरीरसे व्यवहार करते हुए पुरुष को जाग्रद-वस्था के स्थूल शरीर में अहं(मैं) अभिमान न होने से स्वप्ना-वस्था में इस शरीर का(अनन्वयात्) अर्थात व्यभिचार होने से विद्वानोंने स्थूल शरीर आत्म नहीं है किन्तु अनात्माही है। ऐसा निश्चय करना ही उचित है।

शरीरादि कार्य और चक्षुरादि इन्द्रियकरण रूपसंधात से भिन्न आत्मा की जाननेवाले विवेकी पुरुषका और शरीरादिसंधात को ही आत्मा मानने वाले अविवेकी पुरुष का प्रत्यक्ष से भी भेद है। अर्थात् अनुभव सिद्ध भेद भासता है इसी अर्थको वक्ष्यमाण विवेक के फल में श्रद्धाकी उत्पत्ति के लिये उत्तर श्लोक में लिखते हैं।

चतुर्भिरुह्मते यत्तन् सर्वशक्त्या शरीरकम् ।
तूलायते तवेवाहंधिय ।ऽऽ ग्रातमचेतसाम् ॥ २०

अर्थ – सुषुप्ति मूर्च्छा मरण कालमें जिस शरीर को चार पुरुष सर्वशक्ति से उठा सकते हैं वही शरीर अविवेकियों को अहं बुद्धि अर्थात अहं अभिमान से धारण किया हुआ रुई के समान हल्का हो जाता है। प्रायः आस्तिक लोगतो आत्मासे भिन्न स्थूल शरीर को जानतेही हैं इसलिये इस अर्थ के प्रतिपादन के लिए अति आग्रह और विशेषविस्तार नहीं किया इसी अर्थ की समाप्ति के लिये उत्तरश्लोक लिखते हैं:—

स्थूलंयुक्त्या निरस्यैवं नभसोनीलता मिव।
देह सूक्ष्मंनिराकुर्यादतो युक्ति भिरात्मनः॥ २१

अर्थ – आकाशकी नीलता के समान स्थूल शरीरका उक्त-रीति से निषेध करके फिर इसी प्रकार आत्मा से सूक्ष्म देह को भी युक्तियों से भिन्न करे।

ॐ

तेजो विन्दुपनिषद्–

मत्तो ऽन्यदस्ति चेन्मिथ्या यथा मरु मरीचिका।
बन्ध्या कुमार वचने भीतिश्चेदस्ति किञ्चन॥ १३

अर्थः—जैसे मृग तृष्णा का जल मिथ्या है वैसे ही मेरे से अन्य जो कुछ प्रपञ्च भासता है, वह मिथ्या हीं है, यदि बन्ध्या के पुत्र से भय हो तो प्रपञ्च सत्य हो। १४

शश शृङ्गेण नागेन्द्रोमृतश्चेज्जगदस्तितत्।
मृग तृष्णा जलंपीत्वा तृप्तश्चेदस्त्विदं जगत्॥ १४

अर्थः—यदि शशे के सींग से हाथी मर जावे तो जगत् सत्य हो और यदि मृग तृष्णा के जल से प्यास शान्त हो जावे तो जगत् सत्य हो। १४

नर शृङ्गेण नष्टश्चेत् कश्चिदस्त्विद मेवहि ।
गन्धर्व नगरे सत्ये जगद्भवतिसर्वदा ॥ १५

अर्थः—यदि मनुष्य के सींग से कोई नष्ट हो जावे तो जगत सत्य हो, और गन्धर्व नगर यदि सत्य हो तो जगत् हो ।

गगनेनीलिमा सत्ये जगत्सत्यं भविष्यति ।
शुक्तिका रजतं सत्यं भूषणं चेज्जगद्भवेत् ॥ १६

अर्थः—आकाश की नीलता यदि सत्य हो तो जगत सत्य हो, यदि सीपी की चांदी से सत्य भूषण बनें तो जगत् हो ।

रज्जुसर्पेणादष्टश्चेत् नरोभवति संसृति ।
जात रूपेण बाणेन ज्वालाग्नौ नाशिते जगत् ॥ १७

अर्थः—यदि रस्सी का सर्प नर को काट खाये तो जगत् सत्य हो । यदि उत्पन्न होते ही वाण की अग्नि से कोई नाश हो जाये, तो जगत् सत्य हो ।

विन्ध्याटव्यां पायसान्न मस्ति चेगज्जगदुद्भवः
रम्भास्तम्भेन काष्ठेन पाक सिद्धौ जगद्भवेत् ॥ १८

अर्थः—यदि विन्ध्या पर्वत में खीर उत्पन्न हो तो जगत सत्य हो । यदि केले की लकड़ियों से पाक सिद्ध हो जाय तो जगत सत्य हो । १८

सद्यः कुमारिका रूपैः पाके सिद्धे जगद्भवेत् ।
चित्रस्थदी पैस्तमसो नाशश्चे दस्त्विदं जगत् ॥ १६

अर्थः—यदि तुरत के उखाड़े हुए ग्वार पठ्ठे से पाक सिद्ध हो जाय तो जगत सत्य हो । चित्र के दीप से यदि अन्धेरा नाश हो जाय तो जगत् सत्य हो ।

मासात्पूर्वं मृतोमर्त्यो ह्यागतश्चेज्जगद्भवेत् ।
तक्रं क्षीर स्वरूपं चेत् क्वचिन्नित्यं जगद्भवेत् । २०

अर्थः—यदि १ महीने का मरा हुआ मनुष्य जीकर फिर आजावे तो जगत् सत्य हो, और छाछ यदि दूध हो जावे तो जगत् सत्य हो ।

गोस्तनाद्धुद्भवंत्क्षीरे पुनरारोपणे जगत् ।
भूरजोऽब्धौसमुत्पन्ने जगद्भवतु सर्वथा ॥ ८१

अर्थः—गायके स्तनों से निकाला हुआ दूध यदि फिर वापस स्तनों में चला जाय तो जगत् सत्य हो, और समुद्र में यदि धूलि उत्पन्न हो जाये, तो जगत् सत्य हो ।

कूर्म रोम्णा गजे बद्धे जगदस्तु मदोत्कटे ।
नालस्थतन्तुनामेरु श्चलितश्चेज्जगद् भवेत् ॥ ८२

अर्थः—कच्छुवे के रोमों से यदि मस्त हाथी वान्धा जावे, तो जगत् हो, और कमल नाल के तन्तुओं से यदि मेरु पर्वत हिलाया चलाया जावे, जो जगत् सत्य हो ।

तुरङ्ग मालया सिन्धुर्वद्धश्चे दस्त्विदं जगत् ।
अग्नेरधश्चेन्ज्वलनं जगद्भवतु सर्वदा ॥ ८३

अर्थः—यदि घोड़ों की हार से समुद्र वान्धा जावे, तो जगत् सत्य हो और अग्नी की ज्वाला यदि नीचे होकर चले, तो जगत् सत्य हो ।

ज्वाला वन्हिः शीतलश्चेदस्ति रूपमिदं जगत् ।
ज्वालाग्निमण्डले पद्म वृद्धिश्चेन्जगदस्त्विदम् ॥ ८४

अर्थः—अग्नि की ज्जाला यदि ठंडी हो जावे, तो जगत् सत्य हो, और अग्नि की ज्वाला में यदि कमलों की वृद्धि हो, तो जगत् सत्य हो ।

महच्छैले नीलं वा सम्भवे चेदिदं जगत् ।
मेरुरागत्य पद्मान्तेस्थितं श्चेदस्त्विदं जगत् ॥ ८५

अर्थः—यदि बड़ा पर्वत इन्द्र नील मणि का होजावे तो जगत् सत्य हो, और मेरु पर्वत यदि कमल गट्टे के भीतर आकर स्थित हो जावे, तो जगत् सत्य हो।

निगिरेचेद्भृङ्ग सूनुर्मेरुं चलवद् स्त्विदं जगत्।
मशकेन हते सिंहे जगत् सत्यं तदास्तुते ॥ ८६

अर्थः—भ्रम रयादि मेरु पर्वत को निगल जावे तो जगत् सत्य हो। मच्छर यदि सिंह को मारडाले, तो जगत् सत्य हो।

अणु कोटर विस्तीर्णं त्रैलोक्यं चेत् जगत् भवेत्।
तृणानलश्चनित्यश्चेत् क्षणिकं तज् जगद्भवेत् ॥ ८७

अर्थः—अणु के विस्तीर्ण कोटर में त्रिलोक यदि आजावे, तो जगत् सत्य हो, और तृण की अग्नि चिरकाल तक यदि स्थायी रहे, तो जगत् सत्य हो।

स्वप्न दृष्टंचयद्वस्तु जागरे चेन्जगद्भवः।
नदी वेगो निश्चलश्चेत् केनापीदं भवेन्जगत् ॥ ८८

अर्थः—स्वप्ने का देखा पदार्थ यदि जाग्रत में सत्य हो, तो जगत् सत्य हो, और नदी का वेग यदि स्थिर होजावे, तो जगत् सत्य हो।

क्षुधितस्याग्निर्भोज्यश्चेन्निमिषं कल्पितं भवेत्।
जातिरन्धैर्रत्नविषयः सुज्ञातश्चेत् जगत्सदा ॥ ८९

अर्थः—भूखा यदि अग्नि खाजावे, तो जगत् सत्य हो, और जन्म का अन्धा यदि रत्न की परीक्षा करले, तो जगत् सत्य हो।

नपुंसक कुमारस्य स्त्री सुखं चेद्भवेन्जगत्।
निर्मितः शशशृंगेणरथश्चेन्जगदस्ति तत् ॥ ९०

अर्थः—नपुन्सक का कुमार यदि स्त्री के सुख का अनुभव करे, तो जगत् सत्य हो, और यदि शशे के सींग से रथ बनाया जाय, तो जगत् सत्य हो ।

सद्यो जातातुया कन्या भोग्ययोग्याभवेन्जगत् ।
बन्ध्या गर्भाप्ततत्सौख्यं ज्ञाताचेदस्त्विदं जगत् ॥ ६१

अर्थः—सद्य जात कन्या यदि भोग के योग्य होवे, तो जगत् सत्य हो, और बन्ध्या को यदि गर्भ रहने का सुख हो, तो जगत् सत्य हो ।

काको वा हंसवद् गच्छेत् जगद्भवतुनिश्चिलम् ।
महा खरो वा सिहेन युध्यते चेन्जगत् स्थितिः ॥ ६२

अर्थः—कागडा यदि हंस की चाल चले, तो जगत् सत्य हो, और गधा यदि सिंह के साथ युद्ध करे, तो जगत् सत्य हो ।

महा खरोगज गतिं गतश्चेन्जगदस्तु तत् ।
सम्पूर्णां चन्द्र सूर्यश्चेन्जगद्भातु स्वयं जडम् ॥ ६३

अर्थः—गधा यदि हाथी की चाल चले, तो जगत् सत्य हो,

सूर्य चन्द्रादि कौत्यक्त्वा राहुचेत् दृश्यते जगत् ।
भृष्ट बीज समुत्पन्नं वृद्धिश्चेत् जगदस्तुसत् ॥ ६४

अर्थः—सूर्य और चन्द्र के ग्रहण को त्याग कर यदि राहु अकेला दिखाई देवे तो जगत् सत्य हो, और यदि भूंजा हुआ बीज उत्पन्न होकर बढ़े, तो जगत् सत्य हो ।

दरिद्रो धनिकानां च सुखं भुंक्ते तदा जगत् ।
शुनावीर्येण सिंहस्तु जितो यदि जगत्तदा ॥ ६५

अर्थः—कुत्ता यदि सिंह को जीतले, तो जगत् सत्य हो, और कंगाल रंक यदि धनवान् के सुख को भोगे, तो जगत् सत्य हो।

ज्ञानिनोहृदयं मूढैर्ज्ञातं चेत्कल्पनं तदा।
श्वानेन सागर पीतेनिः शेषेण तथा भवेत् ॥ ९६

अर्थः—मूर्ख यदि ज्ञानि के हृदय को जानले, तो जगत सत्य हो, और कुत्ता यदि समस्त सागर को पीजावे, तो जगत् सत्य हो।

शुद्धाकाशेवन जाते चलितेतु तदा जगत्।
केवलेदर्पणे नास्ती प्रतिबिम्वं तदा जगत् ॥ ९८

अर्थः—शुद्ध आकाश में यदि वन लग जावे, तो जगत् सत्य हो, और साफ शुद्ध दर्पण में यदि प्रतिबिम्ब न हो, तो जगत् सत्य हो।

हृदयग्रन्थिरस्तित्वेछिद्यते ब्रह्म चक्रकम्।
अनात्मरूप चौरैश्चेदात्म रत्न रक्षणम् ॥ ९९

अर्थः—हृदय की चेतन जड ग्रन्थि को ब्रह्म चक्र से काट डाले और अनात्म चोरों से आत्मा का रक्षण करे।

एवमादि सुदृष्टान्तै साधितं ब्रह्ममात्रकम्।
ब्रह्मैवसर्वं भावनं भुवनं नाम सत्यं न ॥ १०३

अर्थः—इत्यादि सुन्दर दृष्टान्तों से जगत को मिथ्या प्रदर्शित करके अर्थात् शेष रहे हुए ब्रह्ममात्र को सिद्ध किया ब्रह्म को सर्वथा सर्वत्र भावना करनी चाहिये ब्रह्म से भिन्न भुवनादि कुछ भी सत्य नहीं है।

यह जो कुछ नाम रुपात्मक दृश्य दृष्टि आता है । केवल संकल्प मात्र है, जब तक साधक को यह सब बिल्कुल न होने के समान नहीं हो जाता तव तक उसका बन्धन तो मुक्त होना अतीव कठिन है यह असार संसार शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध इन्हीं पांच वस्तुओं के मिलाप से वना हुआ है. विश्व की जिस वस्तु को देखोगे वह इन्हीं पांच वस्तुओं की बनी हुई होगी और उसके धर्म भी तह तह में केले के छिलके के समान उनमें से ही किसी न किसी के धर्म निकलेंगे उदाहरणार्थ—हम एक पुष्प को लेकर पूछते हैं. कि यह क्या है, तो उत्तर मिलता है. यह पुष्प है. फिर संशय होता है कि पुष्प तो इसका नाम है. इस की असलियत वताओ तो फिर यह उत्तर मिलता है. कि इसमें शब्द है. और शीत कोमल स्पर्श भी है. और लाल रंग (रूप) है. और चखने से रसना को रस भी भासता है. और गन्ध भी अच्छी है. ये पांच गुण ही केले के छिलके समान होकर एक आकृति हो गया और पुष्प नाम रख लिया. वैसे ही समस्त दूसरे पदार्थ भी इन्हीं पांच गुणों से तह पर तह एकत्रित होकर प्रकट हुए दृष्टि आतें हैं । यदि किसी वस्तु में शब्द स्पर्श, रूप और गन्ध न हो तो उसको कोई भी प्रकट (दृश्यवस्तु) नहीं कह सकता उसको सब लोग यही कहेगें यह कुछ नहीं इससे ज्ञात हुआ कि संसार का सार यही पांचतत्व हैं. परन्तु किसी में किसी प्रकार से और किसी में किसी प्रकार से रहते हैं. इसलिये प्रत्येक वस्तु दूसरी वस्तु से भिन्न ही भासती है. किन्तु वास्तव में ये पांच तत्व ही सब में हैं. जब ये पांच तत्व संसार के मूल निर्णीत हो गये, तब बुद्धि मान् पुरूष को उचित है कि इन पांच तत्वों को जाने ये क्या है । बुद्धिमान पुरूष तो थोड़े ही विचार से जान सकता है. कि मानव, दानव, पशु, पक्षि ढोल नगारा, बंशी शंखादि सब प्रकार के शब्द कान के गुण हैं. और कान ही उनकी खान

है क्योंकि कान न हो तो शब्द का कुछ भी अस्तित्व नहीं हो सकता. जैसे धूप (प्रकाश) का सूर्य कारण है. वैसे ही शब्द का कारण है. जैसे सूर्य के बिना धूप का कोई कारण नहीं है.वैसे ही कान के बिना शब्द का कोई कारण नहीं है। इसलिए अच्छे बुरे सब शब्द कान के धर्म हैं और यही उनकी खान है. इसी प्रकार शीत उष्ण. कोमल और कठोर आदि स्पर्श त्वक् इन्द्रिय के गुण हैं अतः त्वक् इन्द्रिय उनकी खान है. क्योंकि यदि त्वक् इन्द्रिय न हो तो स्पर्शादि नहीं होते, और ये सब तभी भासते हैं, जब त्वक इन्द्रिय होता है. जैसे धूप भी तभी भासती है. जब सूर्य होता है जब सूर्य नहीं होता. तब धूप भी नहीं होती वैसे ही शीतोष्णतादि की प्रतीति इनको जानने वाली त्वक् इन्द्रिय के होने से ही होती है, इससे ज्ञात हुआ. शीतोष्णादि स्पर्श त्वक इन्द्रिय के धर्म हैं और रुप रंग का केन्द्र नेत्र है. क्यों विना नेत्र के रंग रुप दृष्टि ही नहीं होता. यदि संसार में नेत्र न होते तो रंग रूप की पहिचान कोई भी मनुष्य नहीं कर सकता इससे सिद्ध हुआ, कि रंग रूप की खान नेत्र है। जैसे धूप सूर्य का गुण है। और प्रकाश दीपक का गुण है। वैसे ही रक्त नील और पीतादि सब रूप नेत्र की छाया हैं।

जैसे सूर्य की धूप सूर्य का गुण और सूर्य की छाया है। जैसे सूर्य से धूप प्रगट होती है वैसे ही सब रूप नेत्रों से प्रगट होते हैं। और मीठे खट्टे आदि सब रस जिह्वा के गुण हैं। और जिह्वा उनकी खान है। यदि जिह्वा न हो तो मीठा खारा आदि कोई भी रस न होता ये जिह्वा के गुणहैं। और सुगन्ध दुर्गन्धादि सब नाक के गुण है। और नाक इनकी खान है। यदि नाक न हो तो दुर्गन्ध सुगन्धादि का भी अस्तित्व नहीं होता ये सब नाक की किरणों हैं। नाक रुप ही है जैसे सूर्य की किरणे सूर्य रुप ही है।

जब यह निर्णीत हो गया कि संसार की सत्ता शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध इन पांच तत्वों से बनी हुई है। और ये पांच तत्व कान त्वक नेत्र रसना और नाक आदि के गुण हैं। और उनका ही रूप है और यही उनकी असलियत है। अतः सिद्ध हो गया कि वास्तव में बाहर कोई भी पदार्थ वर्तमान नहीं है। मनुष्य के नेत्रादि पांचों इन्द्रिय ही वर्तमान है। बिना इन्द्रियों के संसार की कुछ भी सत्ता नहीं है। सूर्य धूप रूप बनकर फैला हुआ है वैसे ही इन्द्रियां भी संसार रूप बनकर फैली हुई हैं। ये इन्द्रियां भी वास्तविक है या इनकी कोई दूसरी खान है थोड़ासा विचारने पर मालूम हो जायगा कि इनकी खान मन है, क्योंकि जब मन होता है तभी ज्ञानेन्द्रियां होती हैं जब मन नहीं होता तब ये भी नहीं होती निद्राकाल में ये सब इन्द्रियां मन में ऐसे लीन हो जाती है। जैसे सूर्य की किरणें सूर्य में इससे ज्ञात हुआ कि शब्द स्पर्शादि निद्राकाल में इन्द्रियों में लीन हो जाते हैं। और इन्द्रियां मन में लीन हो जाती हैं। इससे सिद्ध हुआ संसार की खान मन है। और मन ही फैलकर इन्द्रिय रूप होता हुआ संसार रूप बन जाता है मन के बिना किसी का भी अस्तित्व सिध्द नहीं होता। जब सब संसार मन का विस्तार है। और मन का स्वरूप संकल्प है इससे सिद्ध होता कि संसार संकल्प मय है। मन से भिन्न संसार की कुछ सत्ता नहीं है। मन ही इन्द्रिय तथा विषय बनकर संसार बन जाता है। इस मन के चक्र में फसा हुआ जीव संसार में सुख दुःख का अनुभव करता रहता है बुध्दिमान् मनुष्य को इस मन के विचित्र गुण स्वप्न में भली प्रकार मालूम हो जाते हैं उस दशा में तो शब्द स्पर्शादि से कोई भी बाहर नहीं होता ये सब मन के ही भीतर होते हैं।

किन्तु वह मन क्षण भर में ही झटपटशब्द स्पर्शादि सब विषयों को रच लेता है । और उनको जानने के लिये चक्षुरादि सब इन्द्रियों और शरीर को रच लेता है। और मनुष्य स्वप्न काल में ऐसा व्याकुल होता है जैसे जाग्रत् काल में संसार की उपाधियों से व्याकुल होता है ।

इससे ज्ञात (सिध्द)होता है कि जाग्रत का जगत् और स्वप्न का जगत सब मन का पसारा है और मन ही सब की खान है । यह संसार मिथ्या ही मृग तृष्णा की नदी दूर से अति वेग से वहती हुई के समान है यह मन भी स्वतन्त्र सत्य नहीं है इसका आधार (अधिष्ठान) खान आत्मा है क्योंकि आत्मा के होने पर ही मन होता है। जब आत्मा नहीं होता तब मन भी नहीं होता सुषुप्ति काल में जब आत्मा अपने स्वरूप भूत महिमा में स्थित होता है तो मन भी अपने कारण आत्मा के अज्ञान में ऐसे लीन हो जाता है । जैसे सूर्य की किरणें सूर्य में लीन हो जाती है जब आत्मा जाग्रत और स्वप्न में होता है उस काल मेंमन अपने कारण सेइस प्रकार निकलआता है । जैसे सूर्य में से किरणें निकल आती हैं अतः आत्मा ही सब खानों की खान है इस की खान कोई नही। इससे ज्ञात होता है, जो यह संसार मृग तृष्णा के समान मिथ्या दिखाई देता है इसका प्रादुर्भाव आत्मा से हुआ है और आत्मा में ही स्थित हैं और सुषुप्ति काल में आत्मा में लीन हो जाता है। आत्मा के बिना संसार कुछ नहीं है । सर्वत्र आत्मा ही व्यापक हैं अतः श्रुति भी यही कहती है ।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" यह नाम रुपात्मक विश्व ब्रह्म ही है गीता में भी कहा है "वासुदेव सर्वमिति" अर्थात् सर्व चराचर

प्रपञ्च वासुदेव ही है। यह जो लिखा है हमारा कपोल कल्पित नहीं है इसमें श्रुति भगवती प्रमाण है । तथाहि—

"यथा सर्वासामपां समुद्र एकायनमेवं सर्वेषां स्पर्शानांत्वगे कायन मेवं सर्वेषां गन्धानां नासिके एकायन मेवं सर्वेषां रसानां जिह्वै कायन मेवं सर्वेषां रूपाणां चक्षुरे-कायन मेवं सर्वेषां शब्दानां श्रोत्र मे कायन मेवं सर्वेषां संकल्पानां मन एकायन मेवं सर्वासां विद्यानां हृदय मेकायन मेवं सर्वेषां कर्मणां हस्तावे कायन मेवं सर्वेषा मानन्दानामुपस्थ एकायन सर्वेषां विसर्गानां पायुरे कायन मेवं सर्वेषांमध्वनं पादा वे कायन मेवं सर्वेषां वेदानां वागे कायनम ।

बृहदारण्यकोपनिषद । ११ ॥

इन मंत्रों का अर्थ जो ऊपर लिखा है वही है इसलिये पुन रुक्ति होने से दूसरी धार नहीं लिखा है। "आदावन्तेवयन्नस्ति वर्तमाने पितत्तथा" अर्थात जो पदार्थ आदि अन्त में नहीं होता है। वह वर्तमान में भी नहीं होता जैसे मृग तृष्णा का जल पहिले भी नहीं था। और ज्ञान होने के बाद पीछे भी नहीं रहता मध्य में मिथ्या हो भासता है अथवा जैसे कोई शिशु उत्पन्न हुआ वह उत्पन्न होने के पहिले नहीं था, और दो चार दिन के बाद मर गया मरने के बाद अन्त में नहीं है। भासता था वह मिथ्या ही भासता था वैसे ही यह जगत उत्पत्ति के आदि में नहीं था और प्रलय होने के बाद नही था। अर्थात् वर्तमान काल में भ्रान्ति से अर्थात्—अज्ञान से मिथ्या भासता है।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्त मध्यानिभारत ।
अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परि देवना ॥गीता—

अर्थ ये भूत प्राणी आदि में अव्यक्त अर्थात् अस्पष्ट अदृश्य थे और मरने पर अन्त में अव्यक्त (अदृश्य) हो जाते हैं। मध्य में व्यक्त प्रगट होकर मिथ्या हो भासते हैं।

नित्यां संविद माश्रित्य स्वतः सिद्धा मविक्रियाम्।
सिध्दायन्ते धियो वोधास्तांश्चाश्रित्य घटादयः ॥

अर्थ—स्वभाव से सिध्द नित्य ज्ञान रूप तथा निर्विकार आत्मा को आश्रय करके अन्तःकरण की वृत्तियां सिद्ध होती हैं। और उन साभास वृत्तियों को आश्रयषण करके अर्थात उनमें प्रतिविम्वत होने से घटादि भासते हैं अर्थात् संसार भासता सिध्द होता है आत्मा के बिना अन्तः करण की वृत्तियां सिद्ध नहीं होती और वृत्तियों के बिना संसार सिद्ध नहीं होता अतः सव संसार है ही नहीं अज्ञान से न हुआ ही मिथ्या भासता है हे राम न जगत् है न हुआ है और न होगा और न था। रज्जु में सर्प के समान आत्मा में जगत् मिथ्या भासता है। जागृत् स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्था प्रायः प्रसिद्ध हैं, जिनको प्राणी मात्र अनुभव करते हैं, जिस काल में चक्षुरादि इन्द्रियों सहित विश्वनाम जीव नेत्र में वैठकर व्यवहार करना है उसको जागृत कहते हैं, और जिस काल में चक्षुरादि इन्द्रियों से रहित और केवल मन से ही तैजस नत्म जीव कण्ठ में रहा हुआ अविद्या द्वारा आप ही पदार्थों को रचकर विना सूर्य चन्द्र के प्रकाश से अपने ही प्रकाश से आप ही देखता है उसका नाम स्वप्नावस्था है, और जिस काल में चक्षुरादि इन्द्रिय और मन भी नहीं होता, उस काल में प्राज्ञनाम जीव हृदय में रहा हुआ सुख का अनुभव करता है उसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं सुषुप्ति से उठकर जागने पर कहता है कि आज मैं वड़े ही आनन्द से सोया कौर कुक भी भान नहीं रहा, जागने परही स्मृति होती है, मन और इन्द्रियों के विना जव सुषुप्ति काल में सुख और अज्ञान का आत्मा ने अनुभव किया था, तभी तो जागकर स्मरण करता है, क्योंकि विना अनुभव के स्मरण होता ही नहीं और आत्मा कभी

भी सोना नहीं, मन बुद्धि आदि सोते हैं। यदि आत्मा सो जावे तो विना आत्मा के सुषुप्ति काल के सुख का अनुभव कौन करेगा इस-लिए अनुभव करने वाला आत्मा कभी नहीं सोता, जागृदापदि तीनों अवस्था परस्पर व्यभि चारिणी हैं। और साद्य हैं, आत्मा अव्यभिचारी और साक्षी है, जाग्रत में स्वप्न और सुषुप्ति नहीं होती, और आत्मा तो होता है, इस लिये जाग्रत अवस्था साद्य है और आत्मा साक्षी है, एवं स्वप्न में जागृत और सुषुप्ति नहीं होती किन्तु आत्मा तो होता है अतः स्वप्नावस्था साद्य है, आत्मा साक्षी है, इसी प्रकार सुषुप्ति में जागृत तथा स्वप्नावस्था नहीं होती, और आत्मा होता है, अतः सुषुप्ति साद्य है, आत्मा साक्षी है। आत्मा जाग्रदादि अवस्था का साक्षी तीनों अवस्थाओं में रहता है, तीनों अवस्थाएं दृश्य हैं, जिनके परस्पर अलग अलग हो जाने पर जो अनुवृत अर्थात् व्यापक अनुस्यूत रहता है; वह उनसे अलग ही रहता है, जैसे एक सूत में गुथे हुए पुष्प परस्पर अलग अलग होने पर भी सूत सब पुष्पों में अनुवृत रहता है, अतः पुष्पों से सूत अलग ही है। वैसे ही एक आत्मा में तीन अवस्थाएं अनुवृत हैं, अवस्था त्रय के परस्पर अलग अलग होने पर भी आत्मा सब में अनुवृत होने से अवस्था त्रय से अलग है, इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक करके अवस्था त्रय से आत्मा को अलग जान लेना चाहिये, और जो मैं सोया था, वही मैं जागा हूँ। इस प्रत्यभिज्ञा ज्ञान से अवस्था त्रय का साक्षी आत्मा अवस्था त्रय से भिन्न ही प्रतीत होता है।

जो केवल चक्षुरादि इन्द्रियों से प्रत्यक्ष हो उसे अभिज्ञा प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। और जो चक्षुरादि इन्द्रियों से और स्मृति (संस्कारादि) इन दोनों से प्रत्यक्ष हो, उस को प्रत्यभिज्ञाज्ञान (प्रत्यक्ष) कहते हैं।